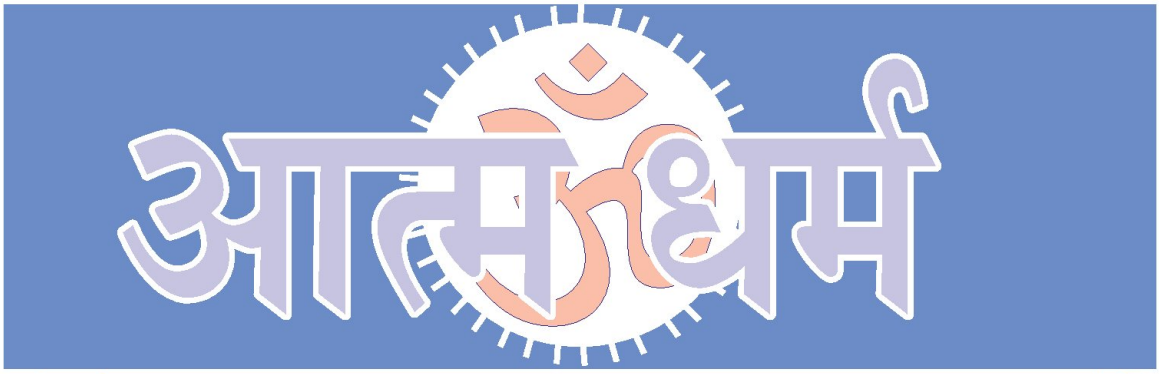

वर्ष चौथा
अंक आठवाँ

: संपादक :
रामजी माणेकचंद दोशी
वकील

मार्गशीर्ष
२४७५

भेदविज्ञानी का अभिप्राय

आत्मा का लक्षण चैतन्य है, चैतन्य का स्वभाव मात्र जानना है। 'यह अच्छा है अथवा यह बुरा है'—ऐसी वृत्ति भी चैतन्य में नहीं है। जैसे आँख परद्रव्यों से भिन्न रहकर उन्हें जानती है, किन्तु परद्रव्यों में कुछ नहीं करती, वैसे ही ज्ञान भी पर को जानता है, परन्तु उसमें कुछ भी नहीं करता। बंगाल प्रान्त में अनाज सड़ गया और बहुत से मनुष्य मर गये, वहाँ अमुक मनुष्यों ने ध्यान नहीं रखा और लापरवाही की, इसलिये यह हुआ–ऐसा अज्ञानी मानते हैं। किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। अनाज सड़ा और मनुष्य मर गये, वह किसी की लापरवाही के कारण नहीं हुआ, किन्तु एक-एक दाना उसके अपने कारण से परिणमित होकर सड़ गया। और जो मनुष्य मर गये हैं, वे उनकी आयु पूर्ण होने से ही मरे हैं, उसमें कोई फेरफार करने के लिये समर्थ नहीं है। कोई भी जीव अपने भाव के अतिरिक्त अन्य में क्या कर सकता है? कुछ भी नहीं कर सकता। 'अनाज न सड़े और मनुष्य न मरें' ऐसा भाव तो जीव कर सकता है, परन्तु वह परद्रव्यों की क्रिया में कुछ भी परिवर्तन नहीं कर सकता। हे भाई! बाह्यद्रव्यों को तो जैसा होना है, वैसा ही होगा; तेरे ज्ञान का स्वभाव तो जानना ही है। देखो तो सही, इसमें ज्ञान की कितनी शांति है! ज्ञान को कोई विघ्न करनेवाला भी नहीं और न सहायक ही। जिसने ऐसा ज्ञानस्वभाव स्वीकार किया है, उसके अभिप्राय में से समस्त राग-द्वेष, बन्धभाव दूर हो गये अर्थात् वह अभिप्राय से तो मुक्त हो गया। अब उसी अभिप्राय के बल से अल्पकाल में ही बंधभावों का सर्वथा नाश करके वह मुक्त होगा।

(श्री समयसार मोक्षाधिकार के व्याख्यान में से)

एक अंक
चार आना

४४

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

आत्मधर्म कार्यालय — मोटा आंकड़िया — काठियावाड़

श्री मगनमल हीरालाल पाटनी दि० जैन परमार्थिक ट्रस्ट मारोठ का

आवश्यक निवेदन

धर्मबंधुओं,

वीर प्रभु की जिस परमपावन वाणी से हम अपना कल्याण कर सकते हैं, उसी वाणी के प्रचार से हम संसार को भी सुख और शान्ति का मार्ग दिखा सकते हैं। अत: यह आवश्यक है कि वीर प्रभु की वाणी से जिस आत्मकल्याण की रसायन को हमने जाना है, उसे दूसरों को भी विदित करावें। इसी अभिप्राय से यह संस्था पिछले कई माह से इस बात का प्रयत्न कर रही है कि जीव मात्र का कल्याण करनेवाले वीर प्रभु के सुनहरी उपदेशों को रेडियो द्वारा समस्त संसार में प्रसारित कराया जावे। आशा है कि हमें इस कार्य में सफलता मिलेगी।

इस कार्य को सुचारुरीति से संपादन करने के लिये हमने ट्रस्ट का सहायक कार्यालय देहली में स्थापित किया है और समाज के अनुभवी विद्वान् श्रीयुत पं. मथुरादासजी शास्त्री B.A. प्रभाकर, न्यायतीर्थ को यह कार्य सौंपा है क्योंकि यह कार्य इस समय इतना सरल नहीं है कि सद्उपदेशों को भी नियमितरूप से सुनाने के लिये जल्दी ही मंजूरी मिल जावे। अत: देहली में रहते हुए ही यह कार्य संपादन हो सकना संभव समझकर वहाँ कार्यालय बनाया है। अत: समाज से निवेदन है कि रेडियो कार्यक्रम सम्बन्धी समस्त पत्रव्यवहार निम्न पते पर ही करें एवं पंडितजी सा. जिन-जिन महानुभावों को इस सम्बन्ध में लिखें, वे अवश्य सहयोग करने की कृपा करें। इस सहयोग के लिये ट्रस्ट उनका विशेष आभारी रहेगा।

देहली का पता—
पं. मथुरादासजी शास्त्री B.A.
C/o भारतबैंक
नं. ६, दरियागंज, दिल्ली।

निवेदक:—
नेमीचन्द पाटनी : प्रधानमंत्री
श्रीमगनमल हीरालाल पाटनी
दि. जैन पारमार्थिक ट्रस्ट, मारोठ (मारवाड़)

वस्तुविज्ञानसार के पाठकों से

हिन्दी वस्तुविज्ञानसार पृ. ५५ की अन्तिम पंक्ति में ''जो संयोगाधीनदृष्टि है सो सम्यग्दृष्टि है'' ऐसा छपा है उसके स्थान में ''जो संयोगाधीन दृष्टि है, सो मिथ्यादृष्टि है'' ऐसा सुधारकर पढ़ें।

ब्रह्मचर्य की दीक्षा

आत्मधर्म के पाठकों को यह शुभ समाचार देते हुए हर्ष होता है कि कार्तिक सुदी १३ रविवार के दिन सोनगढ़ में परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के पास निम्नानुसार छह कुमारिकाओं ने आजन्म ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा ग्रहण की।

(१) मुक्ताबहिन [सुपुत्री, दोशी जगजीवन बाऊचंद सावरकुंडला]

(२) कंचनबहिन [सुपुत्री, शाह छोटालाल डामरभाई ध्रांगध्रा]

(३) शारदाबहिन [सुपुत्री, शाह जगजीवन चतुरभाई वढवाण केम्प]

(४) कंचनबहिन [सुपुत्री, स्व. मगनलाल त्रिभुवनदास वढवाण शहर]

(५) दयाबहिन [सुपुत्री, मेहता शिवलाल खीमचंद राजकोट]

(६) कान्ताबहिन [सुपुत्री, स्व. माणेकचंद त्रिभुवनदास कामदार अमरेली]

उपरोक्त छहों बहिनें बाल-ब्रह्मचारिणी हैं। प्रत्येक बहिन की उम्र लगभग २२ वर्ष के आसपास है। ऐसी उम्र में ऐसा सुन्दर-श्रेष्ठ कार्य करने के लिये छहों बहिनें अभिनन्दन के पात्र हैं। यह ब्रह्मचर्य प्रसंग अत्यन्त उत्साह एवं आनन्दपूर्वक मनाया गया था।

इस दिन प्रातःकाल ब्रह्मचर्य लेनेवाली छहों बहिनों की ओर से श्री जिनमंदिर में पूजन हुई थी, उसके बाद समस्त मुमुक्षु मंडल, श्री जैन अतिथि सेवा समिति से एक छोटे से जुलूस के रूप में श्री जैन स्वाध्यामंदिर आया था। पूज्य गुरुदेव के व्याख्यान के पश्चात् छहों बहिनें ब्रह्मचर्य लेने के लिये खड़ी हुई थीं। इस अवसर पर उनके माता-पितादि कुटुम्बीजन उपस्थित थे और उन्होंने ब्रह्मचर्य लेने के लिए बहिनों को अपनी स्वीकृति दी थी। बहिनों की मुखाकृति उत्साह एवं वैराग्यपूर्ण प्रतीत होती थी।

पूज्य श्री गुरुदेव ने सर्वप्रथम मंगलाचरण करने के पश्चात् कहा था कि "छहों बाल-ब्रह्मचारिणी बहिनें बीस-बाईस बरस की इस छोटी सी उम्र में आजन्म ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा ग्रहण कर रही हैं, यह बहुत श्रेष्ठ काम है। वे सत्समागम में रहकर तत्व के अभ्यासपूर्वक ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा ले रही हैं। ब्रह्मचर्य का रंग होना, सो तत्त्व को समझने के लिये पात्रता है। श्रीमद्राजचंद्रजी ने कहा है कि:—

''पात्र बिना वस्तु न रहे, पात्रे आत्मिकज्ञान;
पात्र थवा सेवो सदा, ब्रह्मचर्य मतिमान।''

पात्र होकर आत्मा का लक्ष्य करने के लिये यदि ब्रह्मचर्य का रंग हो तो वह आगे बढ़ने में निमित्त होता है। पुरुष बाल-ब्रह्मचारी रहते हैं, वे तो स्वतंत्र हैं; इसलिये रह सकते हैं; किन्तु यह बहिनें इस छोटी सी उम्र में ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ले रही हैं, यह बड़े साहस और शक्ति का काम है। सभी जीवों को यह बात अनुमोदन और अनुसरण करनेयोग्य है।

''जे नव वाड विशुद्ध थी, धरे शीयल सुखदाई;
भव तेनो लव पछी रहे, तत्ववचन ये भाई।''

'विशुद्ध थी' अर्थात् यथार्थ तत्त्वदृष्टिपूर्वक जिसके ब्रह्मचर्य होता है, उसे विशेष भव धारण नहीं करना पड़ते। सत्समागम में रहकर तत्त्वदृष्टिपूर्वक जिसके ब्रह्मचर्य होता है, उसके एकाध भव शेष रहता है। व्यभिचार, सो संयोग है; संयोगीदृष्टि छोड़कर असंयोगी आत्मा का लक्ष करने के लिये अब्रह्मचर्य को छोड़कर ब्रह्मचर्य का प्रेम आवश्यक है।

ब्रह्मचर्य लेनेवाली बहिनों ने ऐसे ही बिना सोचे समझे ब्रह्मचर्य नहीं ले लिया है; सभी बहिनें चार-पाँच वर्ष से यहाँ अपूर्व तत्व का श्रवण और अभ्यास कर रही हैं। तत्व का निरंतर श्रवण करके उसका मनन और विचार करती हैं तथा उसे समझती हैं। इसप्रकार विचारपूर्वक वे यह कार्य कर रही हैं। यह कार्य लोगों को अनुकरण करनेयोग्य है।

इसके पश्चात्, पहले किसी कुगुरु-कुदेवादि के, सेवन से एवं सच्चे देव-गुरु की अविनय आदि से, हिंसादि पापों से, विषयवृत्ति-आदि प्रकारों से यदि कोई दोष लगे हों तो अनन्त सिद्धों की साक्षी से, संतों की साक्षी से प्रायश्चित् अर्थात् ''मिच्छामि दुक्कडं'' कराया था....

तत्पश्चात् ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा देते हुए कहा था कि आत्मा की ओर आगे बढ़ने के लिये और अब्रह्म के पाप को छोड़ने के लिये सिद्धभगवान की, चार तीर्थों की, देव-गुरु की और अपने आत्मा की साक्षीपूर्वक यावज्जीवन-आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन करना।

इसप्रकार ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा की विधि पूर्ण हुई थी, और उसी समय ब्रह्मचारिणी बहिनों ने ज्ञान पूजा, शास्त्र-पूजा की थी।

श्री जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट की ओर से ब्रह्मचर्य लेनेवाली प्रत्येक बहिन को एक चाँदी का ग्लास और साड़ी (धोती) के रूप में ५ रुपया भेंट दिये गये थे।

✗ ✗ ✗ ✗ ✗ ✗

सोनगढ़ में भाइयों के लिये तो सनातन जैन ब्रह्मचर्य आश्रम छह वर्ष से है, किन्तु इस शुभ प्रसंग पर बहिनों के लिये भी ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना हुई है; उसके लिये सेठ श्री नानालाल कालीदास की ओर से रुपया २५०१ /- तथा उनकी धर्मपत्नी जड़ावबहिन की ओर से रुपया २५०१/- कुल मिलाकर ५००२/- रुपया प्राप्त हुआ है, एवं अन्य मुमुक्षु भाई-बहिनों की ओर से भी रकमें आई हैं। इसप्रकार कुल लगभग ११५००/- रुपया हुआ है। ब्रह्मचारिणी बहिनों के लिये ब्रह्मचर्याश्रम की यह स्थायी व्यवस्था हो गई, यह भी प्रभावना की वृद्धि का ही कारण है।

इस मंगल-अवसर पर श्री जैन स्वाध्यामंदिर ट्रस्ट और समस्त मुमुक्षु समाज की ओर से ब्रह्मचारी बहिनों के अभिनन्दन स्वरूप एक भाषण विद्वान भाई श्री हिम्मतलाल जे. शाह ने दिया था। उसमें उन्होंने मुख्यतया सत्समागम एवं तत्त्वज्ञानपूर्वक के ब्रह्मचर्य की महिमा बताई थी और ब्रह्मचारी आत्माओं का ध्येय सफल हो—ऐसी भावना की थी। इस शुभ अवसर पर छहों बहिनों के घर गोचरी के लिये पधारकर पूज्य गुरुदेव ने उनके गृह को पवित्र किया था। उस समय का वातावरण अत्यंत आनन्द एवं उत्साहपूर्ण था।

✗ ✗ ✗ ✗ ✗ ✗

यथार्थ तत्त्व की रुचिपूर्वक जीवनभर ब्रह्मचर्य पालन करने को पूज्य गुरुदेव "ब्रह्मचर्य की दीक्षा" कहते हैं। तत्त्व की रुचिपूर्वक एक साथ छह कुमारियों का आजीवन ब्रह्मचर्य अंगीकार करने का यह प्रसंग भारत के इतिहास में अप्रतिम है। वास्तव में तो परम उपकारी पू. गुरुदेव श्री कानजी स्वामी सोनगढ़ में निरंतर जो असंग चैतन्यतत्त्व का उपदेश दे रहे हैं, उसी का यह एक छोटा सा फल है। परम असंगी शुद्ध आत्मतत्त्व का जो उपदेश वे दे रहे हैं, उसमें ऐसा प्रभाव है कि जो उस उपदेश का श्रवण और मनन करता है, उसके जीवन में वैराग्य भाव की सहज ही पुष्टि होती जाती है।

ब्रह्मचर्य ग्रहण करनेवाली बहिनों के जीवन में परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के मुख से निरंतर बहती हुई शुद्ध उपदेश धारा के अतिरिक्त, परम पूज्य पवित्र बहिन श्री चंपाबहिन और शांताबहिन का भी महान् उपकार है। उन्होंने दिन-रात उनके जीवन को ज्ञान-वैराग्य से सिंचित किया है। माता की भाँति उन्होंने उनके जीवन का निर्माण किया है। माता के सदृश इन दोनों बहिनों की गोद में रहकर ही छहों बहिनों ने सत् के चरणों में जीवन समर्पण करने की यह शक्ति प्राप्त की है।

इसप्रकार जगत के सामान्य जीवों को जो बात लगभग अशक्य जैसी मालूम होती है, वही बात संतों के चरणों में अत्यंत सुगम बन जाती है, यह उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। ब्रह्मचर्य किसी सामान्य लौकिक हेतु से नहीं लिया है, किन्तु जीवनपर्यंत संतों के चरण में-सत्समागम में रहकर आत्महित साधन करने के लक्ष्य से लिया है; यह उसकी विशेषता है।

शुद्ध के लक्ष्य की ओर उन्मुख होनेवाले को बीच में शुभरागरूप व्यवहार तो आ ही जाता है, और उसी से, भाई-बहिनों के ब्रह्मचर्यादि के अनेक शुभ प्रसंग पूज्य गुरुदेव के चरणों में होते हैं। और 'सोनगढ़ में व्यवहार नहीं है, व्यवहार नहीं है, अथवा पुण्य नहीं है' ऐसा कहनेवालों के विचारों पर यह प्रसंग पानी फेर देते हैं। सोनगढ़ में लोकोत्तर व्यवहार और पुण्य तो है, किन्तु 'उससे धर्म हो' ऐसी मिथ्या-मान्यता नहीं है।

अन्य जीव जिन दोषों को टालने में असमर्थ दिखाई देते हैं, वे दोष सत्संग में रहनेवाले जीव के सहजमात्र में नष्ट हो जाते हैं। इससे श्रीमद् राजचन्द्रजी कहते हैं कि 'अवश्य ही इस जीव को प्रथम समस्त साधनों को गौण जानकर, निर्वाण का मुख्य हेतु जो सत्संग है, वही सर्व-अर्पणरूप से उपासना करनेयोग्य है; जिससे सर्वसाधन सुलभ होते हैं, ऐसा हमारा आत्मसाक्षात्कार है।' फिर सत्संग में रहनेवाले जीव की विशेष जागृति के लिये आप लिखते हैं कि 'वह सत्संग प्राप्त होने पर यदि इस जीव का कल्याण न हो तो अवश्य ही इस जीव की भूल है... मिथ्याग्रह, स्वच्छंदता, प्रमाद और इन्द्रिय विषयों से उपेक्षा की हो (अर्थात् उन्हें टालने की ओर लक्ष न दिया हो) तभी सत्संग फल नहीं देता। अथवा सत्संग में एकनिष्ठा, अपूर्वभक्ति न की हो तो वह फलवान नहीं होता। यदि ऐसी अपूर्वभक्ति से सत्संग की उपासना की हो तो मिथ्याग्रहादि अल्पकाल में ही नाश को प्राप्त हों, और जीव अनुक्रम से सर्व दोषों से मुक्त हो जाये।'

फिर सत्संग की विशेष महिमा करते हुए वे लिखते हैं कि ''जीव का सत्संग की पहिचान होना दुर्लभ है। किसी बड़े पुण्य के योग से उसकी पहिचान होने से 'निश्चय करे कि यही सत्संग-सत्पुरुष है' ऐसा साक्षीभाव उत्पन्न हुआ हो तो उस जीव को तो अवश्य ही प्रवृत्ति को संकुचित करना चाहिये। अपने दोष क्षण-क्षण में कार्य-कार्य में और प्रसंग-प्रसंग पर तीक्ष्ण उपयोग करके देख लेना चाहिये, देखकर उन्हें परिक्षीण करना चाहिये और उस सत्संग के लिये यदि देह त्याग करने का योग भी बन जाय तो उसे स्वीकार लेना चाहिये। किन्तु किसी पदार्थ के प्रति उससे विशेष भक्ति-स्नेह होने देना योग्य नहीं है।''

उपरोक्त कथन के अनुसार यदि जीव, सत्पुरुष की उपासना करे तो अवश्य ही उसके सत् की रुचि में वृद्धि होकर इधर-उधर पड़े हुए (सूक्ष्म) दोष नष्ट हो जायें और ब्रह्मस्वरूप आत्मा का परमानन्दमय जीवन उसे प्राप्त हो जाये।

वास्तव में जिन जीवों ने सत्पुरुषों के चरणों में अपना जीवन समर्पित किया है, उन्होंने अपने जीवन को उज्वल बनाया है, एवं माता-पिता को, अपने कुल को उज्वल किया है। आत्मार्थी जीवों! सत्संग की आराधनापूर्वक, आत्मा में अखण्डवृत्ति रहने के प्रयोजन से ब्रह्मचर्य को प्राप्त करके शुद्धता की ओर उन्मुख हो, उसमें विशेष आगे बढ़ो और उससे समस्त दोषों को छेदकर पूर्ण ध्येय को प्राप्त करो-आत्मिक विषय से उत्पन्न परमानन्द को प्राप्त करो।

अन्त में, संतों की असीम कृपा से जिन-जिन भाई-बहिनों ने जैसी पवित्र वैराग्य-भावना पूर्वक ब्रह्मचर्य ग्रहण किया है, वैसा वैराग्य उनके जीवन में निरंतर जागृत रहे! उसमें प्रतिदिन वृद्धिपूर्वक निर्विघ्नरूप से तत्त्वज्ञान में अग्रसर होकर आत्महित साधें, जीवन के ध्येय को प्राप्त करें, और इसप्रकार श्री जिनशासन को एवं सद्गुरु-महात्म्य को सुशोभित करें।

सत्पुरुषों के चरणों में जिनका जीवन है, उनका जीवन धन्य है। ●

❀ ❀ ❀

श्री परमात्म-प्रकाश-प्रवचन

(अंक ४२ से आगे)

[श्री परमात्मप्रकाश पर परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के व्याख्यानों का सार]

[१५] परमात्मा को किसप्रकार नमस्कार किया है ?

पहली गाथा में परमात्मा का जैसा स्वरूप है, वैसा जानकर नमस्कार किया, वह मांगलिक है। जो परमात्मा हुये है, उनके पहले परमात्मपर्याय प्रगट नहीं थी, किन्तु शक्तिरूप परमात्मस्वभाव था। उस स्वभाव की पहिचान और ध्यान करके परमात्मदशा प्रगट की। इसप्रकार निर्दोष शक्ति, निर्दोष उपेय और उसका निर्दोष उपाय, इन तीनों का ज्ञान करके परमात्मा को नमस्कार किया है।

[१६] ध्यान का स्वरूप

परमात्मदशा का उपाय ध्यान है-ऐसा कहा है। वह ध्यान कैसा है ? परमात्मस्वभाव की श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें ही स्थिरतारूप चारित्र, वह अभेदरत्नत्रय निर्विकल्प समाधि है,

उससे वीतरागी परमानंद समरसीभावरूप सुखरस का स्वाद उत्पन्न होता है, वही ध्यान का लक्षण है। किसी निमित्त का लक्ष नहीं, और पर्याय का भी लक्ष नहीं, मात्र चैतन्यसमुद्र में लीन हो जाना ही ध्यान है।

[१७] ध्यान किसके होता है ?

ध्यान अर्थात् एकाग्रता। वह ध्यान किसके होता है ? रागरहित स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वह आत्मा का ध्यान है, वही धर्मध्यान है, और वह मुक्ति का कारण है। राग में एकाग्र होना, वह आर्तध्यान है। वह संसार का कारण है। आत्मस्वभाव को समझे बिना कभी आत्मा का ध्यान होता ही नहीं। सम्यग्दृष्टि के चौथे गुणस्थान में भी आत्मा का ध्यान होता है। ध्यान, साधक जीवों के ही होता है, केवली भगवान के ध्यान नहीं होता क्योंकि उनके तो परमात्मदशा प्रगट हो गई है।

[१८] चार प्रकार के नय और उनका विषय

परमात्मस्वभाव के ध्यान द्वारा कर्मकलंक का नाश करके सिद्ध-परमात्मदशा होती है। अब यहाँ 'कर्म-कलंक का नाश किया' उसके ऊपर नय लागू होता है। कर्म दो प्रकार के होते हैं—(१) भावकर्म (२) द्रव्यकर्म। भावकर्म अर्थात् जीव में जो विकार होता है वह, और ज्ञानावरणादि कर्म हैं, वह द्रव्यकर्म है।

अशुद्ध निश्चयनय अर्थात् क्या ? राग विकार है, इसलिये 'अशुद्ध' और वह स्व की पर्याय है, इसलिये 'निश्चय'; उसे जाननेवाला ज्ञान, सो अशुद्ध निश्चयनय है। कर्मों को दूर करने का उपाय तो शुद्धस्वभाव की दृष्टि है। जो अशुद्ध निश्चयनय है, वह कर्मों को दूर करने का उपाय नहीं है। भावकर्म दूर हुये, यह किसने जाना ? वह अशुद्ध निश्चयनय ने जाना है। आत्मा में मलिनता थी और वह दूर हुई, यह अशुद्ध निश्चयनय का विषय है। यहाँ 'स्व' वह निश्चय और 'पर' वह व्यवहार, ऐसी अपेक्षा है, इससे रागादि स्वपर्याय को निश्चय के भेद में गिना है। त्रैकालिक शुद्ध स्वभाव, वह शुद्ध निश्चयनय का विषय है। सम्यगदर्शन का विषय वह त्रैकालिक स्वभाव है। किन्तु जो सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, वह तो नवीन पर्याय है, वह आत्मा की शुद्धपर्याय है। इस गाथा में शुद्धपर्याय प्रगटी, उस पर नय लागू नहीं किया है, इसमें तो त्रिकाली स्वभाव को ही शुद्ध निश्चयनय का विषय कहा है। किन्तु त्रैकालिक शुद्धस्वभाव को जब परम शुद्ध निश्चय कहते हैं, तब निर्मल पर्याय को शुद्ध निश्चयनय का विषय कहा जाता है।

अशुद्ध निश्चयनय द्वारा कर्म जले—ऐसा नहीं है। किन्तु शुद्ध निश्चय के अवलंबन से कर्म जले हैं। यहाँ तो 'कर्म जले' ऐसा जाननेवाला कौन सा नय है ? उसकी बात है। अशुद्ध निश्चयनय उसे जानता है।

प्रश्नः-अशुद्ध निश्चयनय द्वारा अशुभ दूर होकर शुभ हो, इतनी शुद्धता तो होती है न ?

उत्तरः-नहीं, जो शुभराग होता है, उसके द्वारा शुद्धता नहीं बढ़ती। किन्तु त्रिकाल स्वभाव की दृष्टि के बल से शुद्धता बढ़ती है, और वहाँ जितना राग दूर हुआ, उतना अशुद्ध निश्चयनय का विषय है। किन्तु स्वभाव के आश्रय के बिना यदि अशुभ में से शुभ करे तो वहाँ कोई शुद्धता नहीं बढ़ती। 'आत्मा ने भावकर्म को जलाया' ऐसा जानना, सो अशुद्ध निश्चयनय है। इस ग्रन्थ में 'स्व' सो निश्चय और 'पर' सो व्यवहार, ऐसी अपेक्षा से नयों का वर्णन किया है। इससे रागादि पर्याय को अशुद्ध निश्चय के रूप में वर्णन किया गया है। नयों के अनेक प्रकारों का ज्ञान विशेष निर्मलता का कारण है, इसलिये जहाँ अनेक प्रकार आवें, वहाँ घबड़ा नहीं जाना चाहिये।

(१) त्रिकाली कारणपरमात्मा है, (२) उसे जाननेवाली-माननेवाली निर्मलपर्याय प्रगट होती है, (३) जो रागादि अशुद्धता है, वह दूर होती है, (४) और कर्म उनके कारण से दूर हो गये-इन सबको पहिचानना तो पड़ता है न ? इसे कौनसा ज्ञान जानता है ? (१) जो त्रिकाली शुद्ध आत्मस्वभाव है, उसे जानना, सो परम शुद्धनिश्चयनय है (२) उस स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान-स्थिरतारूप मोक्षमार्ग प्रगट हुआ है, उसे जाने, वह एकदेश शुद्ध निश्चयनय है। जो पूर्ण दशा प्रगट हुई, उसे जाने, वह शुद्ध निश्चयनय है। (३) जो अशुद्धता थी, वह दूर हो गई-इसे जाने, वह अशुद्ध निश्चयनय है और (४) ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा कर्म दूर हुये, इसे जानना वह असद्भूत अनुपचरित व्यवहारनय है।

संपूर्ण वस्तु, निर्मल अवस्था, मलिन अवस्था और कर्म—इत्यादि निमित्तों का अभाव-ऐसे जो चार प्रकार हैं, उन प्रत्येक को जाननेवाले ज्ञान को भिन्न-भिन्न नाम देना पड़ेंगे। यह चारों एक ही नय का विषय नहीं कहलाते। जैसे विषय में चार प्रकार हैं, उसीप्रकार उसे जाननेवाले ज्ञान में भी चार प्रकार होते हैं-यह बतलाता है। श्री समयसारजी की प्रथम बारह गाथाओं में और पंचाध्यायी में जहाँ नयों का वर्णन है, वहाँ तो मात्र आत्माश्रित कथन ही है, वहाँ पर के साथ नय लागू किये ही नहीं। लेकिन यहाँ वह अपेक्षा नहीं है। यहाँ स्व-पर दोनों की अपेक्षा से नय का कथन आयेगा।

जो त्रिकाली द्रव्य है, उसमें अशुद्धता नहीं होती। यदि त्रिकाली वस्तु ही बंधे तो उसका

अभाव हो जाय, और यदि त्रिकाली वस्तु ही प्रगटे तो उसकी नई उत्पत्ति हो, इसलिये त्रिकाली वस्तु में बंध-मोक्ष नहीं है, किन्तु पर्याय में बंध-मोक्ष है। अशुद्धता को जानता है, वह अशुद्ध निश्चयनय है, किन्तु यदि वही नय त्रैकालिक वस्तु को जानता हो तो त्रैकालिक वस्तु ही अशुद्ध हो जाय; किन्तु त्रिकाली वस्तु को जाननेवाला नय भिन्न है। इसप्रकार चार पहलू हैं, उन प्रत्येक को जाननेवाला नय भिन्न-भिन्न है।

प्रश्नः- वर्तमान एक समय के लिये तो संपूर्ण वस्तु अशुद्ध हो जाती है ?

उत्तरः- नहीं, संपूर्ण वस्तु अशुद्ध होती ही नहीं। संपूर्ण वस्तु अशुद्ध हुई—ऐसा कहना उपचार से है। क्योंकि अज्ञानी जीव मात्र वर्तमान पर्याय का ही संपूर्ण वस्तु मान लेते हैं, किन्तु वस्तु के दूसरे शुद्ध पहलुओं को नहीं जानते, इससे वे संपूर्ण वस्तु को ही अशुद्ध मानते हैं। ऐसा जानकर ज्ञानीजन कहते हैं कि अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय से वस्तु अशुद्ध हुई। अज्ञानी तो संपूर्ण वस्तु को ही अशुद्ध मानते हैं, दूसरे शुद्ध पहलुओं का उन्हें ज्ञान नहीं है, इससे उनके ज्ञान में 'नय' नहीं होते।

जब पानी गर्म हुआ है, उस समय भी उसका स्वभाव शीतल है; पानी का वह शीतल स्वभाव इन्द्रियों द्वारा ज्ञात नहीं होता। इसीप्रकार आत्मा में विकारीपर्याय हो, उस समय भी द्रव्य-गुणस्वभाव शुद्ध है-यह शुद्धता इन्द्रियों द्वारा ज्ञात नहीं होती। अन्य प्रकार से कहा जाय तो शास्त्र में से ज्ञात नहीं होती, स्वभाव से ही ज्ञात होती है। क्या त्रैकालिक शक्ति वर्तमानरूप में हो गई है ? यदि त्रैकालिक शक्ति वर्तमानरूप में हो जाय तो दूसरे समय पर्याय कहाँ से आयेगी ? इसलिये वस्तु की शक्ति त्रिकाल शुद्ध है। अशुद्धपर्याय के समय भी शुद्धस्वभाव ही है; यह स्वभाव इन्द्रियों से, शास्त्र से या गुरु के अवलंबन से नहीं जाना जा सकता; यह स्वभावदृष्टि का विषय है। जीव का स्वभाव तो इन्द्रियज्ञान से नहीं जाना जाता किन्तु पुद्गल का स्वभाव भी इन्द्रियज्ञान से ज्ञात नहीं होता। इसलिये पर्याय में विकार होने पर भी, उसी समय इन्द्रिय और इन्द्रिय के विषयभूत पदार्थों का लक्ष्य छोड़कर अपने त्रैकालिकस्वभाव को अतीन्द्रियज्ञान के द्वारा देखे तो अपना स्वभाव शुद्ध है, यह अनुभव में आता है।

जैसे (१) स्वयं पिता हो (२) एक कमाऊ पुत्र हो (३) एक उड़ाऊ धूर्त पुत्र हो (४) और घर में एक नौकर रहता हो तो वह प्रत्येक को भिन्न-भिन्न जानता है। (१) मैं ही पुत्र हूँ—ऐसा नहीं मानता (२) कमाऊ पुत्र को आदरणीय मानता है (३) उड़ाऊ पुत्र को हेय जानता है और (४) नौकर को पर जानता है। वैसे ही आत्मा में—(१) त्रैकालिक शुद्धस्वभाव है, वह पितारूप है, एक

पर्याय हो, उतना ही वह नहीं है, किन्तु त्रिकाल है। (२) निर्मल मोक्षदशा अथवा मोक्षमार्गदशा, वह आदरणीय है (३) मलिन अवस्था दूर करने योग्य है, और (४) कर्म पर हैं। उन चारों प्रकारों को जाननेवाले ज्ञान में भी भिन्न-भिन्न चार नय हैं। (१) त्रैकालिक स्वभाव को जानता है, वह परम शुद्ध निश्चयनय है। (२) निर्मलपर्याय, सो आत्मा है, ऐसा जानता है, वह शुद्ध निश्चयनय है। (३) रागादि अशुद्धभाव आत्मा में है-ऐसा जानता है, वह अशुद्ध निश्चयनय है और (४) आत्मा में से कर्म दूर हुए-ऐसा जानता है, वह अनुपचरित असद्भूतव्यवहार है। *(अपूर्ण)*

सूचना

आत्मधर्म के पाठकों को यह सूचित करते हुए हर्ष होता है कि श्री समयसार-प्रवचन (हिन्दी) प्रथमभाग छपकर तैयार हो गया है। जिसके ४६८ पृष्ठों में पूज्य श्री कानजी स्वामी द्वारा प्रतिपादित निश्चय-व्यवहार की संधिपूर्वक मोक्षमार्ग का सरल भाषा में स्पष्टीकरण किया गया है। अनुवादक पं. परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ। मूल्य मात्र छह रुपया, डाकव्यय दस आने अतिरिक्त।

मिलने का पता—

(१) श्री पाटनी दिग. जैन पा. ट्रस्ट, मारोठ (मारवाड़)

(२) श्री जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (काठियावाड़)

(३) अनेकान्त मुद्रणालय, मोटा आंकड़िया (सौराष्ट्र)

सिद्ध होने का उपाय

[परम पूज्य श्री कानजी स्वामी का प्रवचन]

''सर्व जीव छे सिद्धसम, जे समजे ते थाय,
सद्गुरु आज्ञा जिनदशा, निमित्त कारण माय॥''

(गुज. आत्मसिद्धि गाथा १३५)

आत्मा के धर्म कैसे हो और उसकी मुक्ति कैसे हो ?-यह इसमें बताया है। अपना आत्मा शुद्ध सिद्ध भगवान के समान है, शरीर से भिन्न है, उसकी पहिचान और माहात्म्य न करे तो शरीर की ममता करके उसे स्थिर रखना चाहता है। एक अँगुली में यदि सर्प डस ले और वह अँगुली

सड़ने लगे तो वहाँ वह अँगुली काटवाकर भी शरीर को स्थिर रखना चाहता है, अँगुली को काटकर भी जीना चाहता है। वैसे ही जिसे अपने आत्मा को विकार से छुड़ाकर शुद्ध परमात्मरूप से जीवित रखना हो, उसे शरीर, मन, वाणी और विकारी भाव–इन सब की उपेक्षा करनी पड़ेगी।

सर्प काटे और अँगुली सड़ने लगे, तब कोई वैद्य कहे कि यदि जीवित रहना हो तो अँगुली कटाना पड़ेगी। वहाँ शरीर के ममत्व के कारण अँगुली की अपेक्षा छोड़ देता है। वैसे ज्ञानी कहते हैं कि तेरा आत्मा परमात्मस्वभावी है, और वर्तमान अवस्था में विकाररूप सड़ा हुआ है। यदि अपने समस्त आत्मा को शुद्ध परमात्मारूप से, विकार से भिन्न रखना हो तो उस विकार को व शरीर आदि की उपेक्षा करनी पड़ेगी।

प्रश्न :—विकार से और शरीरादि से उपेक्षा किसप्रकार की जा सकती है ?

उत्तर :—प्रथम तो अपने आत्मा की ऐसी श्रद्धा करना कि मेरा आत्मस्वभाव सिद्धभगवान जैसा ही है। मेरे आत्मस्वभाव में राग–द्वेषादि विकार नहीं हैं, वैसे ही शरीर, मन, वाणी भी नहीं हैं। ऐसे अपने आत्मा को रागादि और शरीर आदि से भिन्न जाना और माना, वहाँ श्रद्धा में मात्र आत्मस्वभाव रहा और शरीर आदि से उपेक्षा हो गई। शरीर को रखने के लिये अँगुली को अलग करता है, वहाँ तो ममत्व है और आत्मा के लिये शरीर आदि का ममत्व छोड़ता है, वहाँ स्वभाव की दृढ़ता है, और वह धर्म है।

'सर्व जीव छे सिद्ध सम' यह द्रव्यदृष्टि की बात है। मैं सिद्ध जैसा हूँ। सिद्ध भगवान आत्मा हैं, वे भी पहले संसार में थे। उस आत्मा ने पहले अपने स्वभाव को शरीर से और विकार से भिन्न जाना, और आत्मा की महिमा द्वारा श्रद्धा में से शरीरादि की उपेक्षा की। वैसे मैं भी सिद्ध जैसा हूँ, मेरा आत्मा ज्ञान–दर्शन की मूर्ति है, शरीरादि मैं नहीं हूँ, रागादि भी मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसी श्रद्धा करने से अपने आत्मस्वभाव की दृढ़ता होती है और शरीरादि की महिमा दूर होती है; इसी को, आत्मा के लिये शरीरादि की उपेक्षा कर दी–ऐसा कहा जाता है।

विकार से और शरीर से भिन्न सिद्ध समान हूँ, इसप्रकार जिसने अपने आत्मा को शरीर से और विकार से भिन्न जाना है, उसने श्रद्धा में से शरीरादि की उपेक्षा कर दी है और उसके पश्चात् क्रमशः अपने आत्मा में स्थिरता करके राग टालने पर सिद्धदशा प्रगट होती है, और विकार तथा शरीर सर्वथा दूर हो जाते हैं। इसप्रकार जो अपने आत्मा को सिद्धसमान समझते हैं, वे सिद्ध होते हैं। सिद्ध होना, वह तो नवीन पर्याय है किन्तु स्वभाव से तो समस्त आत्मा सदैव सिद्धसमान हैं।

जो अपने आत्मा को शुद्ध सिद्धसमान माने और विकार से भिन्न जाने, वही विकार को दूर कर सकता है। जिसप्रकार वैद्य कहता है कि एक अँगुली कटवा डालो, तभी शरीर बचेगा। वहाँ अपने को विश्वास आता है कि यह अंगुली कटवा डालने पर भी सारा शरीर बचा रहेगा। इससे वहाँ शरीर के ममत्व द्वारा अँगुली कटवा डालता है। उसीप्रकार ज्ञानी कहते हैं कि यदि तुझे अपने समस्त आत्मा को जीवित रखना है तो रागादि की श्रद्धा को छोड़। राग और शरीर चला जायगा तो भी तू पूर्ण सिद्ध रहेगा। सिद्ध भगवान, शरीर और राग के बिना जीते हैं-वही सच्चा जीवन है। हे जीव! यदि तुझे अपने आत्मा का यथार्थ जीवन रखना हो तो तू अपने आत्मा को सिद्ध जैसा जान। अपने आत्मा को विकारी मानने से आत्मा का भावमरण होता है। अपने आत्मा को सिद्ध समान जानना-मानना ही धर्म है, और वही शांति का उपाय है।

शरीर में सर्प का जहर चढ़ा हो तो वैद्य वमन कराके वह निकलवा देता है। उसीप्रकार आत्मा में मिथ्यात्वरूपी सर्प का जहर चढ़ा है। आत्मा, शरीर से भिन्न है, यदि उसे जीवित रखना हो तो उस मिथ्यात्वरूपी सर्प के जहर का वमन करना चाहिये। अर्थात् आत्मा की पहिचान के द्वारा मिथ्या-श्रद्धा का वमन करके सम्यक्श्रद्धा करना चाहिये। मुझे शुभराग से लाभ हो, अथवा मैं शरीर का कुछ करूँ, देश का कुछ करूँ, परजीवों का कुछ करूँ-ऐसी मान्यतावाले जीवों को मिथ्यात्वरूपी सर्प का जहर चढ़ा है। वह जहर किसप्रकार उतरे? 'सर्व जीव छे सिद्ध सम, जे समजे ते थाय।' समस्त जीव परिपूर्ण परमात्मा हैं, जो अपने आत्मा को उस स्वरूप में जाने, उसका मिथ्यात्वरूप जहर उतर जाता है और वह सिद्ध होता है। इसलिये अपने आत्मा की प्रतीति ही धर्म का उपाय है। अपनी आत्मा की प्रतीति के अतिरिक्त यात्रा, पूजा, भक्ति, दया, दान इत्यादि शुभराग से धर्म नहीं होता।

धर्म करने के लिये क्या करना चाहिये? इसका उत्तर यह है कि-आत्मा को सिद्ध के समान पहिचानना। मैं शरीर का कुछ करनेवाला हूँ, अथवा विकार जितना ही हूँ-ऐसा नहीं मानना, किन्तु शरीररहित और विकार से भी भिन्न शुद्ध परमात्मा हूँ, इसप्रकार अपने आत्मा को जानकर, मिथ्याश्रद्धा का वमन करके, सम्यक्श्रद्धा करना चाहिये। अपने आत्मा को सिद्ध समान श्रद्धा में लिया, इसके बाद भी उसका ही माहात्म्य करके क्रमशः स्वरूप में स्थिर हो और रागादि का त्याग करे। यथार्थ प्रतीति होने के पश्चात् जो रागादि रहते हैं, उन्हें ज्ञानी अपने स्वरूप में नहीं मानता इसलिये वे टलने के लिये ही हैं। सच्ची प्रतीति होने के बाद ज्ञानी को जो राग होता है, उसे वह

आदरणीय नहीं मानता, किन्तु अपने शुद्धस्वरूप को ही आदरणीय मानकर उसमें स्थिर होता जाता है, और क्रमशः संपूर्ण स्थिरता प्रगट करके सिद्ध होता है; सम्यक् प्रतीति का ही यह फल है। जो अपने आत्मा को विकारी अथवा शरीरवाला मानता है, उसके तो विकार की वृद्धि होती है, और नये-नये शरीर का संयोग बना रहता है। और जो अपने आत्मा को सिद्ध समान मानता है, वह सिद्ध होता है। आत्मा की यथार्थ प्रतीति और उसका फल बताकर अब सच्चे निमित्त कारणों की पहचान कराते हैं।

''सर्व जीव छे सिद्धसम, जे समजे ते थाय,
सद्गुरु आज्ञा जिनदशा, निमित्त कारण माय॥''

दूसरी लाईन में निमित्तकारण का ज्ञान कराया है। अपना मूलस्वरूप समझने में जीव को आत्मज्ञानी गुरु ही निमित्तरूप होते हैं। यदि कोई ऐसा कहे कि 'आत्मज्ञानी गुरु मिले बिना ही मैं अपने आप समझ जाऊँ, तो वह स्वच्छन्दी है। अपना यथार्थ स्वरूप अनन्तकाल से नहीं समझा है; इसलिये बिना गुरुगम, स्वच्छन्दता से वह नहीं समझा जा सकता। सद्गुरु की आज्ञा से ही समझ में आता है। सद्गुरु की आज्ञा ही शास्त्र है, इसमें पराधीनता नहीं है। पहले सद्गुरु के प्रति अर्पणता आये बिना आत्मस्वभाव समझ में नहीं आयेगा। जिसके आत्मस्वभाव समझने की अपूर्व तैयारी होती है, उसके सद्गुरु के प्रति अत्यन्त दीनतापूर्वक अर्पणता होती ही है। इसप्रकार सद्गुरु की आज्ञा निमित्तकारण में है। प्रथम उपादान को समझा कर पश्चात् निमित्त की पहिचान कराते हैं।

जिनदशा है, सो वह भी निमित्तकारण है। वीतरागी जिन चैतन्यबिम्ब रागरहित आत्मस्वभाव है, जिनदशा जैसा शुद्ध चैतन्यस्वभाव है, उसको ही गुरु आज्ञा बताती है। अर्थात् अपने आत्मा को वीतरागी जिनस्वरूप से जानना, सो सद्गुरु की आज्ञा है।

अथवा, 'जिनदशा' अर्थात् वीतरागी जिनदशावाली प्रतिमा, वह निमित्त है। मानों चैतन्यबिम्ब ही हो, ऐसी जिनदशावाली प्रतिमा आत्मस्वभाव समझने का निमित्त है। जिसके ज्ञान में ऐसी सद्गुरु की आज्ञा समझ में आती है, उसे वीतरागी जिनमुद्रा निमित्तरूप होती है।

ज्ञानी की आज्ञा यह है कि हे चैतन्य! तू जिन वीतराग हो। पहले ऐसी श्रद्धा कर कि मैं वीतरागस्वरूप हूँ, मेरा चैतन्यस्वरूप विकाररहित है। विकार होने पर भी ऐसी श्रद्धा करना, सो धर्म है। प्रथम तो श्रद्धा में तू वीतराग हो जा। ऐसी सम्यक्श्रद्धा के पश्चात् भी जिनेन्द्रदेव के प्रति बहुमान, भक्ति और सद्गुरु की आज्ञा का श्रवण-मनन, अर्पणता इत्यादि शुभराग होता है।

विकल्पदशा होने पर भी यदि देव-गुरु के प्रति भक्ति-बहुमान न हो तो वह जीव स्वच्छन्दी है। यदि सर्वथा राग ही न हो और वीतरागदशा हो गई हो तो देव-गुरु के प्रति बहुमान का शुभभाव न आये और यदि स्वच्छन्दी हो तो देव-गुरु के प्रति बहुमान और अर्पणता न आये। किन्तु निम्न भूमिका में पात्र जीवों के तो देव-गुरु के प्रति अर्पणता होती है, इसलिये यहाँ यथार्थ निमित्तकारण सिद्ध किया है।

अपने स्वभाव से समस्त जीव सिद्ध समान हैं ही। पर्याय में किसी के कम ज्ञान होता है और किसी के अधिक, किन्तु स्वभाव से समस्त जीव समान हैं। ऐसे आत्मा को समझना, सो सिद्ध होने का उपाय है। इसलिये हे जीव! तू अपने आत्मा को सिद्ध जैसा जान। श्रीगुरु की यही आज्ञा है, शास्त्र भी यही बताते हैं और वीतरागी प्रतिमा भी यही स्वभाव बताने में निमित्त हैं।

यदि अपने उपादान स्वभाव को जानकर उसमें स्थिर हो गया हो तो निमित्त का लक्ष्य ही न हो। किन्तु निम्नदशा में राग होता है, वहाँ निमित्तों का विवेक होता है। उपादान के आश्रय से निमित्त की श्रद्धा छोड़ने योग्य है परन्तु उपादान की पहिचान करते हुये उसे बतानेवाले निमित्तों का ज्ञान और बहुमान आये बिना नहीं रहता। मात्र उपादान की बातें करे और देव-गुरु के प्रति जो बहुमान होना चाहिये, वह न करे तो जीव स्वच्छन्दी हो जाये, और यदि अपने शुद्ध चैतन्यस्वभाव में भावों से स्थिर होकर निमित्त का लक्ष्य छोड़ दे तो जीव सिद्धत्व को प्राप्त होता है।

प्रथम तो अपने आत्मा की परवाह होना चाहिये कि मैं आत्मा कौन हूँ? क्या मैं राग जितना ही हूँ? या राग से भिन्न कोई तत्त्व मुझमें है? मैंने अपने आत्मा के लिये अनंतकाल में कुछ भी नहीं किया। अनंतकाल में शरीरादि के ममत्व के लिये आत्मा से प्रयोजन छोड़ दिया है, किन्तु आत्मा के लिये कभी शरीर की उपेक्षा नहीं की। आत्मा को भूलकर बाह्य पदार्थों की महिमा की, उसके फलस्वरूप यह संसार के दु:खों का वेदन हो रहा है। इसप्रकार यथार्थ उत्साहपूर्वक सद्गुरु की आज्ञा से अपने आत्मा को सिद्ध जैसा जाने, माने और आत्मा के लिये श्रद्धा में से शरीरादि सबकी उपेक्षा करे अर्थात् आत्मा के अतिरिक्त सबकी श्रद्धा छोड़ दे तो अल्पकाल में मुक्त हो जाय।

हे जीव! आत्मा ज्ञातास्वभाव ही है, उसकी रुचि, बहुमान और श्रद्धा कर, और 'विकार है, सो मैं हूँ, तथा शरीरादि मेरे हैं'—ऐसी श्रद्धा को छोड़। इसप्रकार अपने आत्मा को पहिचानने के पश्चात् जो राग हो, उसे स्वरूपस्थिरता द्वारा क्रमश: दूर करके, शेष जो शुद्ध सिद्ध के समान आत्मा रह गया, उसका नाम मुक्ति है। अपने आत्मा को सिद्धरूप से जाना, उसका फल सिद्धदशा है। यह

पहिचान करने के लिये सद्गुरु का समागम बारम्बार करना चाहिये।

श्रीमद् राजचन्द्रजी ने 'आत्मसिद्धि' की १३६ वीं गाथा में आत्मा का शुद्धस्वरूप, उसकी प्राप्ति का उपाय तथा उसके निमित्त कैसे होते हैं-यह सब बतला दिया है। और सच्ची जिनप्रतिमा कैसी होती है, वह भी उसमें आ जाता है।

जबतक अपने स्वभाव की महिमा नहीं आती, तबतक पर की महिमा दूर नहीं होती और पर का ममत्व छोड़ नहीं सकता। सिर के बालों को अच्छा रखने के लिये बारम्बार ध्यान रखता है, सिर के बालों के ममत्व के लिये अज्ञानी जीव चैतन्य की संभाल छोड़ देता है। जितना प्रयोजन सिर के बालों की रक्षा करने का है, उतना चैतन्य की रक्षा करने का नहीं है। सिर के बालों की तो श्मशान में राख होती है। होली में लकड़ी की कारीगरी करके जलाओ या ऐसी की ऐसी जलाओ-इसमें कोई अन्तर नहीं है। उसीप्रकार इस जड़ शरीर की संभाल करो या न करो, उसे नष्ट ही होना है। इसलिये हे जीव! तू शरीर का प्रयोजन छोड़ कर चैतन्य की संभालकर। शरीर से भिन्न आत्मा की पहिचान, उसकी श्रद्धा और माहात्म्य कर।

प्रश्न :— ऐसी श्रद्धा तो जब वीतराग हो तब हो सकती है न?

उत्तर :— आत्मा का स्वभाव तो राग-द्वेष रहित ही है-ऐसी श्रद्धा करे तो पर्याय में से राग-द्वेष दूर हो। प्रथम ही सर्वथा राग-द्वेष दूर नहीं हो जाता किन्तु रागरहित जो स्वभाव है, उसकी श्रद्धा करने से क्रमशः राग-द्वेष दूर हो जाता है। लौकिक विद्या (परीक्षा) में अनुत्तीर्ण न हो जाये, उसके लिये प्रयोजन रखता है और अनेकप्रकार की पाठशालाओं में पढ़ता है, किन्तु अपने आत्मा की प्रतीति में भूल न पड़े, उसकी दरकार नहीं रखता, और चैतन्य की प्रतीति के लिये सत् समागम नहीं करता; उसके धर्म कहाँ से हो? जिसे धर्म करना हो और अपने आत्मा की मुक्ति करना हो, उसे सत्समागम से अपने आत्मा को सिद्ध समान समझना चाहिये, उसकी महिमा करनी चाहिये, और उसके अतिरिक्त अन्य सबकी महिमा को त्याग करना (छोड़ना) चाहिये।●

आत्मा स्वतः ही ज्ञान और सुखरूप होता है, उसे इन्द्रियों की अपेक्षा नहीं है!

[कार्तिक सुदी एकम के दिन श्री प्रवचनसार गाथा १९ पर परम पूज्य श्री कानजी स्वामी का मंगल प्रवचन]

[१] सुप्रभात का सबरस

भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेव प्रवचनसार की १९ वीं गाथा में कहते हैं कि—शुद्धोपयोग के प्रभाव से जिस आत्मा के घातिकर्मों का क्षय हो गया है, जो अतींद्रिय हुआ है, जिसका अनंत उत्तम वीर्य है और उत्कृष्ट ज्ञान-दर्शनरूप प्रकाश है-ऐसा वह 'स्वयंभू' आत्मा स्वयमेव ज्ञान और सुखरूप परिणमता है।

इस वर्ष सुप्रभात के मांगलिकरूप से यह गाथा आई है। अनेक बार पद्मनंदि शास्त्र में 'सुप्रभात अष्टक' के श्लोक वाँचे जाते हैं किन्तु अबकीबार यह सुन्दर गाथा मांगलिकरूप से आयी है। केवलज्ञान ही सुप्रभात है। जिन आत्माओं को केवलज्ञान प्रगट हो गया है, उनके स्वभाव से ही ज्ञान और सुखरूप परिणमन होता है-इसका वर्णन करके श्री कुंदकुंदाचार्यदेव स्वयं इस गाथा में केवलज्ञानरूपी सुप्रभात के गीत गाते हैं।

शुद्धोपयोग के प्रभाव से आत्मा के अनादिकालीन संसार का नाश करके जो केवलज्ञान और सिद्धदशा प्रगट हुई, वह आत्मा का सुप्रभात है, वह आगामी अनंतकाल तक रहेगा।

आज नूतनवर्ष के प्रभात में लोग 'सबरस' को याद करते हैं। लोग तो नमक को सबरस मानते हैं परन्तु वह तो खारा है, वह वास्तविक 'सबरस' नहीं। केवलज्ञान और पूर्ण आनंदरूप आत्मदशा है, वही 'सबरस' है। जैसे नमक प्रत्येक भोजन में प्रवेश करके उसे स्वादिष्ट बनाता है इससे लोग उसे 'सबरस' कहते हैं; वैसे ही आत्मा का केवलज्ञान प्रगट होने पर समस्त वस्तुओं में अन्तर्गत होकर ज्ञान उन्हें जान लेता है, और वह ज्ञान, अनाकुलतारूप आनंदरस से परिपूर्ण है, इससे वास्तव में वही 'सबरस' है। जैसे नमक समस्त वस्तु में प्रवेश करके उसे स्वादिष्ट बनाता है, वैसे ही ज्ञान समस्त वस्तुओं से भिन्न रहने पर भी, समस्त वस्तुओं के स्वरूप के पार को इसप्रकार प्राप्त हो जाता है, जैसे वह उस वस्तु में प्रविष्ट हो गया हो; और जैसे नमक रस देता है, वैसे ही केवलज्ञान स्वतः आनंदरूप है। इसप्रकार सबको जानता है, इसलिये 'सब' और आनंदसहित है,

इसलिये 'रस', इसप्रकार केवलज्ञान स्वत: सबरस है। ऐसे आत्मिक 'सबरस' को यथार्थ जानना-मानना, वह मंगल है। नूतनवर्ष के मंगलप्रभात में वास्तविक रीति से उसी सबरस का (आत्मा के ज्ञान-आनंद स्वभाव का) स्मरण-ज्ञान-ध्यान करना चाहिये। ऐसे निर्मल ज्ञान और आनंदरूप जो आत्मदशा है, वही यथार्थ सुप्रभात है। कार्तिक सुदी एकम की तिथियाँ तो अनंत आईं और चली गईं, परन्तु उनसे आत्मा का कोई हित नहीं हुआ। इसलिये वास्तव में कार्तिक सुदी एकम का दिन है, सो सुप्रभात नहीं है; किन्तु आत्मा का पवित्र भाव ही सुप्रभात है; इस सुप्रभात के प्रगट होने से आत्मा में सुख-आनंद प्रगट होता है, और वह कभी अस्त नहीं होता। ऐसे सुप्रभात का वर्णन श्री कुन्दकुन्द भगवान ने इस गाथा में किया है।

कार्तिक वदी अमावस के दिन श्री वर्द्धमानस्वामी सिद्धा हुये और गौतमस्वामी केवलज्ञान को प्राप्त करके अरिहन्त हुये। केवलज्ञान होने पर उनका ज्ञान लोकालोक के समस्त पदार्थों के अन्त को प्राप्त हो गया-सब को जान लिया, और आत्मा का परिपूर्ण स्वाभाविक आनन्द प्रगट हुआ, इसप्रकार उनको 'सबरस' की प्राप्ति हुई। ऐसे सबरस की प्राप्ति की भावना से आज भी भव्यजीव प्रभात में उसका स्मरण करते हैं। प्रभात में अर्थात् आत्मा की दशा में। आत्मा में जो अज्ञानरूपी अन्धेरी रात्रि है, उसे ज्ञानप्रकाश के द्वारा दूर करना, वही सच्चा प्रभात है। परिपूर्ण ज्ञान के द्वारा सबको जाननेवाले और आनन्द रस से परिपूर्ण—ऐसे आत्मस्वभावरूपी सबरस की अपने ज्ञान प्रकाशरूपी सुप्रभात में प्रतीति करना, वही मंगलप्रभात है। 'मैं आत्मा परिपूर्ण ज्ञान आनंदस्वरूप हूँ, मेरे स्वभाव में से शुद्धोपयोगरूपी कार्य की ही उत्पत्ति होती है।' ऐसे अपने शुद्धोपयोगस्वभाव की श्रद्धा और अंतर-आचरण द्वारा केवलज्ञान प्रगट होता है, यही सुप्रभात मांगलिक है। प्रथम ऐसी श्रद्धा करना, वह भी मंगलस्वरूप है। कार्तिक सुदी एकम का सूर्य तो अनंतबार उदित हुआ किन्तु उसके उदय से आत्मा का हित नहीं होता, और वह तो फिर अस्त हो जाता है। तथा शुद्धोपयोग द्वारा आत्मस्वभाव में से जो चैतन्यप्रकाश प्रगट हुआ-(केवलज्ञानरूपी सूर्य प्रगट हुआ), वह परिपूर्ण आनंदस्वरूप है और उसका कभी अन्त नहीं होता। ऐसा जो आत्मा में नूतनवर्ष का प्रारंभ हुआ वह सादिअनंत है, यही सच्चा मंगल महोत्सव है।

[२] सैंतीस अक्षर का महामंत्र

श्री कुन्दकुन्द प्रभु की यह मंगल गाथा केवलज्ञानरूपी सुप्रभात प्रगट होने के मंत्र हैं। इस पुस्तक में (जो कि व्याख्यान में पढ़ी जा रही है) यह उन्नीसवीं गाथा सुनहरे रंग में छपी हुई है। श्री

कुन्दकुन्दमुनि के पवित्र चारित्रदशा वर्त रही है। उस चारित्रदशा के अन्तर अनुभव को इन गाथाओं में उतारा है। लगभग दो हजार वर्ष पहले उन्होंने जो अक्षरों द्वारा रचना की है, वही अक्षर आज मौजूद हैं। उनके अन्तर में से जो शब्द निकले थे, वही मूल शब्द आज पढ़े जाते हैं। शब्द लिखने की लिपि भले ही भिन्न हो परन्तु शब्दों की ध्वनि और उच्चार जो श्री कुन्दकुन्द भगवान के समय था, वही इस समय है। यह शब्द नहीं परन्तु केवलज्ञान के लिये मंत्र हैं; विकल्प उठने पर ज्ञातारूप से इन शब्दों की रचना हुई है, इनका वाच्यभाव उनके अन्तर में था। इस सैंतीस अक्षर के मूल-महामन्त्र में क्या भाव भरे हुये हैं, उन्हें देखो:—

पक्खीणघादिकम्मो अणंतवरवीरिओ अधिक तेजो।
जादो आदिंदिओ सो णाणं सोक्खं च परिणमदि ॥१९॥

सोलहवीं गाथा में कहा था कि शुद्धोपयोग की भावना के प्रभाव से वह आत्मा-स्वयं जिसने स्वभाव को प्राप्त किया है, जो सर्वज्ञ है और जो तीनलोक के अधिपतियों से पूजित है-ऐसा स्वयमेव हुआ है, इसलिये वह (शुद्धोपयोगी आत्मा) 'स्वयंभू' है-ऐसा श्री जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

इसप्रकार शुद्धोपयोग के प्रभाव से स्वयंभू हुए इस आत्मा को इन्द्रियों के बिना किसप्रकार ज्ञान और आनंद होता है, वह इस गाथा में बताया है। उसका गुजराती हरिगीत निम्नानुसार है:—

प्रक्षीणघातिकर्म, अनहदवीर्य, अधिकप्रकाश ने,
इन्द्रिय अतीत थयेल आत्मा ज्ञानसौख्ये परिणमे ॥१९॥

अर्थ—जिसके घातिकर्मों का क्षय हो गया है, जो अतीन्द्रिय हुआ है, अनंत जिसका उत्तम वीर्य है और अधिक (उत्कृष्ट) जिसका (केवलज्ञान और केवलदर्शनरूप) तेज है—ऐसा वह (स्वयंभू आत्मा) ज्ञान और सुखरूप परिणमित होता है।

[३] आत्मा का स्वभाव ही ज्ञान और आनंद है

आज के मांगलिकरूप में स्वाभाविक ज्ञान और स्वाभाविक आनंद की बात आई है। केवली भगवान जैसा ही समस्त आत्मा का स्वभाव है। केवली भगवान की तरह समस्त आत्मा का स्वभाव समझना चाहिये।

कोई यह कहे कि शरीर, इन्द्रियाँ इत्यादि पदार्थों के बिना आत्मा को ज्ञान और आनंद किसप्रकार प्रगट हो सकता है? सिद्ध भगवान को शरीर और इन्द्रियों के बिना आत्मा का आनंद और ज्ञान किसप्रकार हो सकता है? उसका समाधान श्री आचार्यदेव करते हैं कि—शरीर और

इन्द्रियाँ किसी भी जीव के ज्ञान अथवा सुख का कारण नहीं हैं, किन्तु जीव स्वयं ही ज्ञान और आनंदस्वरूप है। संसारी जीवों के जो इन्द्रियजनित ज्ञान और सुख है, उस ज्ञान और सुखरूप कहीं शरीर या इन्द्रियाँ परिणमित नहीं होती, किन्तु शरीरादि के लक्ष से वह जीव स्वयं ही कल्पित सुख और ज्ञानरूप परिणमित होता है। जो जीव, शरीर और इन्द्रियों का लक्ष छोड़कर शुद्धोपयोग के प्रभाव से अतीन्द्रिय हुए हैं, वे स्वतः स्वयमेव ज्ञान और आनंदरूप परिणमित होते हैं; उनको ज्ञान और आनंद के लिये किसी अन्य पदार्थ की आवश्यकता नहीं होती। किसी आत्मा का ज्ञान अथवा सुख पर-पदार्थों में से नहीं आता किन्तु अपने स्वभाव के भानपूर्वक शुद्धोपयोग के प्रभाव से आत्मा स्वतः ही ज्ञान-आनंदस्वरूप हो जाता है, यही सुमंगल प्रभात है।

[४] तीन प्रकार का सुप्रभात

अनादिकाल से आत्मा में मिथ्यात्वरूपी रात्रि का अंधकार छाया था। आत्मा के शुद्धोपयोग के बल से सम्यग्दर्शनरूपी प्रकाश प्रगट करने पर अनादि का मिथ्यात्वरूप अंधकार नाश हुआ और आत्मा में सुप्रभात प्रगट हुआ। यह पहले प्रकार का (जघन्य) सुप्रभात है। उसके पश्चात् उसी शुद्धोपयोग के बल से स्वरूप में लीन होने पर सम्यक्चारित्ररूप सुप्रभात प्रगट हुआ, और अव्रतरूप (शुभ-अशुभभावरूप) अंधकार का नाश हुआ। यह दूसरे प्रकार का (मध्यम) सुप्रभात है। उसके पश्चात् संपूर्ण शुद्धोपयोग के प्रभाव से वीतरागता हुई और घातिकर्म नष्ट हुए, और आत्मा में केवलज्ञानादि स्वचतुष्टय का परिपूर्ण प्रकाश हुआ। यह संपूर्ण (उत्कृष्ट) सुप्रभात है। और वहाँ आत्मा स्वतः स्वयमेव अतीन्द्रियज्ञान और सुखरूप होता है। यहाँ मांगलिकरूप से ऐसे संपूर्ण सुप्रभात की बात है।

[५] इन्द्रियों और शरीर के बिना ही आत्मा के ज्ञान-आनंद होता है।

केवलज्ञानदशा में आत्मा स्वतः अतीन्द्रियसुख और अतीन्द्रियज्ञानरूप परिणमित होता है। ज्ञान और सुख अपना स्वभाव ही है। जो अपना स्वभाव है, उसरूप आत्मा स्वतः परिणमित हो गया, इससे जो स्वतः ज्ञान और सुखरूप हुआ, वह अपने से कभी दूर नहीं होता, और उसके लिये इन्द्रिय, शरीर आदि किसी अन्य की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह बात श्री अमृतचंद्राचार्यदेव इस गाथा की टीका में स्पष्ट समझाते हैं। टीका निम्नानुसार है:—

''शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से जिसके घातिकर्म क्षय हो गये हैं, क्षायोपशमिक ज्ञान-दर्शन के साथ असंपृक्त होने से जो अतीन्द्रिय हुआ है, समस्त अंतराय का नाश हो जाने से अनंत जिसका

उत्तम वीर्य है, समस्त ज्ञानावरण और दर्शनावरण का प्रलय होने से अधिक जिसका केवलज्ञान और केवलदर्शन नाम का तेज है-ऐसा यह (स्वयंभू) आत्मा, समस्त मोहनीय का अभाव होने से अत्यन्त निर्विकार शुद्ध चैतन्यस्वभाववान् आत्मा का अनुभव करता हुआ स्वयमेव (स्वतः ही) स्वपर-प्रकाशकता लक्षण ज्ञान, और अनाकुलता लक्षण सुख होकर परिणमित होता है। इसप्रकार आत्मा का ज्ञान और आनंद स्वभाव ही है; और स्वभाव तो पर से निरपेक्ष (उदासीन-स्वतंत्र) होने से इन्द्रियों के बिना भी आत्मा को ज्ञान और आनंद होता है।'' (गुजराती प्रवचनसार गाथा १९ की श्री अमृतचंद्राचार्य कृत टीका का हिंदी भाषांतर)

[६] पूर्ण शक्ति स्वभाव है, उसकी श्रद्धा और एकाग्रता से पर्याय में पूर्णता प्रगट होती है

सम्यग्दर्शन के द्वारा अपने परिपूर्ण शुद्धात्मा को पहिचानकर, शुद्धोपयोग के बल से ज्ञान प्रगट हुआ, तभी से आत्मा में सुप्रभात का प्रारंभ हुआ। यह सुप्रभात अनंतकाल तक ऐसा का ऐसा ही रहेगा। पहले आत्मा में केवलज्ञान और केवलदर्शनरूपी दो नेत्र बंद थे-वह नेत्र खुल गये। समस्त आत्मा में केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंत आनंद और अनंतवीर्य—यह स्वचतुष्टय शक्तिरूप से त्रिकाल हैं, पहले उनकी श्रद्धा और एकाग्रता नहीं होने से वे फूल की कली की भाँति बंद थे। जब उस शक्तिस्वभाव की श्रद्धा और एकाग्रता की, तब वे संपूर्णरूप से विकसित हो गये-जो शक्ति में था, वह परिणमन में प्रगट हुआ। ऐसा मंगल वर्ष प्रारम्भ हुआ सो हुआ, अब फिर से वह प्राप्त करना नहीं रहा। आत्मा कृतकृत्य हो गया।

[७] शुद्धोपयोग की सामर्थ्य द्वारा...

केवलज्ञानयपी सुप्रभात कहाँ से प्रगट हुआ? आत्मा में जो शक्ति थी, वही प्रगट हुई है। समस्त आत्मा में परिपूर्ण शक्ति है, उसकी यथार्थ प्रतीति और एकाग्रता द्वारा केवलज्ञान और अतीन्द्रियसुख प्रगट होता है, वह महान मंगलरूप है; और ऐसे आत्मस्वभाव की श्रद्धा, सो भी प्रारंभिक महामंगल है। शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से ही आत्मा, केवलज्ञान और अतीन्द्रिय आनंदरूप स्वतः स्वयमेव हो जाता है। इसमें किसी की सहायता नहीं है, राग अथवा विकल्प का आलंबन नहीं है, काल विघ्न नहीं करता, गुरुकृपा की अपेक्षा नहीं है, कर्म की अपेक्षा नहीं है, मनुष्य देह अथवा महाविदेहक्षेत्र की सहायता नहीं है। सबसे निरपेक्ष स्वयं-स्वतः ही ज्ञान और सुखरूप होता है। आत्मस्वरूप की प्रतीति के बल से शुद्धोपयोग होता है और इस शुद्धोपयोग की सामर्थ्य से यह दशा उदित होती है। मात्र चैतन्य के अंतर मंथनरूप ज्ञानदशा अर्थात् आत्मा में ही रमणतारूप दशा

से ही केवलज्ञान प्रगट होता है। किसी निमित्त से नहीं, संयोग से नहीं, कर्म हट गये, उससे नहीं; पहले की मलिन दशा दूर हुई, उसके कारण से नहीं, पहले की अपूर्णदशा के कारण भी नहीं, किन्तु शुद्धोपयोग के वर्तमान सामर्थ्य से ही अपने शुद्ध चैतन्यस्वभाव का अनुभवन करता हुआ आत्मा स्वतः ज्ञान और सुखरूप परिणमित होता है।

शुद्धोपयोग का अर्थ क्या? शुद्धात्मस्वभाव में ज्ञान की एकाग्रता, वह शुद्धोपयोग है। जैसा शुद्धस्वभाव है, वैसा जाने बिना और श्रद्धा किये बिना उसमें ज्ञान की एकाग्रता हो ही नहीं सकती। शुद्धात्मा को जाने और श्रद्धा करे, तभी से शुद्धोपयोग का प्रारंभ होता है और पश्चात् उसी में संपूर्ण एकाग्रतारूप शुद्धोपयोग पूर्ण होने पर केवलज्ञान और अतीन्द्रियसुख आत्मा में प्रगट होता है। वही मंगल है।

केवलज्ञानदशा में आत्मा स्वयं संपूर्ण ज्ञान और अतीन्द्रियसुखरूप परिणमित होता है। शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से घातिकर्मों का क्षय होकर केवलज्ञान प्रगट होता है। किसी शुभराग के सामर्थ्य से अथवा भूतकाल की अपूर्ण शुद्धपर्याय के सामर्थ्य से केवलज्ञान प्रगट नहीं होता। शुद्धोपयोग का ही सामर्थ्य है, और उसका आत्मा कर्ता है किन्तु जड़कर्म के नाश का कर्ता आत्मा नहीं है। शुद्धोपयोग से स्वद्रव्य का आलंबन लिया अर्थात् वर्तमान पर्याय, स्वद्रव्य में ही लीन हुई, वहाँ वह पर्याय स्वतः अतीन्द्रियज्ञान और सुखरूप परिणमित हो गई। पहले आत्मस्वरूप का सम्यक्दर्शन और सम्यग्ज्ञान था, तब से ही शुद्धोपयोग का प्रारंभ हो गया था। किन्तु वह उपयोग संपूर्णरूप से स्वद्रव्य के अवलंबन में स्थिर नहीं होता था, इससे केवलज्ञान प्रगट नहीं था। अब मात्र स्वद्रव्य के आलंबन द्वारा उपयोग को पर में से हटाकर स्वभाव में लीन किया, इस शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से घातिकर्म नाश हुए और आत्मा स्वयं केवलज्ञानरूप हो गया। सम्यग्दर्शन भी शुद्धोपयोग से प्रगट होता है और केवलज्ञान भी शुद्धोपयोग से प्रगट होता है। वास्तव में शुद्धोपयोग प्रगट करना ही जीव का पुरुषार्थ है अर्थात् अवस्था को स्वद्रव्य के अवलंबन में स्थिर करना यही पुरुषार्थ है। जड़कर्मों का नाश करने का जीव का पुरुषार्थ नहीं है और परमार्थ से तो विकारभाव का नाश करने का भी पुरुषार्थ नहीं है, क्योंकि जो विकारभाव है, वह तो स्वयमेव नाश को प्राप्त होता है। जीव ने स्वतः जब शुद्धोपयोग का सामर्थ्य प्रगट किया अर्थात् स्वभाव के अवलंबन में स्वयं स्थिर हुआ, तब अशुद्धता की उत्पत्ति ही नहीं हुई, इससे ऐसा कहा जाता है कि जीव ने अशुद्धता का नाश किया, और उस समय घातिकर्म भी अपने आप नष्ट हो गये। जीव में जब शुद्धोपयोग का

सामर्थ्य प्रगट नहीं था, तब अशुद्धता थी और घातिकर्म निमित्तरूप थे; और जीव ने जब शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से स्वद्रव्य में लीनता की, तब अशुद्धता की उत्पत्ति ही नहीं हुई और उस अशुद्धता के निमित्तरूप घातिकर्म भी दूर हो गये, इसप्रकार उपादान-निमित्त की संधिपूर्वक कथन है।

[८] श्री आचार्यभगवान की उत्कृष्ट शैली और उनकी अंतरदशा

'स्वयंभू' हुये आत्मा के ज्ञान और सुख का वर्णन करते हुये श्री आचार्यदेव कहते हैं कि—शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से जिसके घातिकर्म नाश को प्राप्त हुए हैं.... ऐसा 'यह' स्वयंभू आत्मा स्वतः ही स्वपरप्रकाशक-लक्षण ज्ञान और अनाकुलता-लक्षण सुख होकर परिणमित होता है। अहो! देखो, आचार्य प्रभु की वर्णन शैली! जिसने घातिकर्मों का क्षय किया है, उसको वर्तमान में अपने ज्ञान में याद करके और स्वयं अपनी स्वरूपरमणता को नवीन करके, मानो वर्तमान में शुद्धोपयोग की रमणता से घातिकर्मों का क्षय करके स्वतः ही अतीन्द्रियज्ञान और सुखरूप परिणमित हो रहे हों! ऐसी शैली से आचार्यदेव सुप्रभात के गीत गाते हैं—'स्वयंभू' आत्मा की महिमा करते हैं। अहो! आत्मा के इस पल को और इस क्षण को धन्य है कि जिस पल में और जिस क्षण में चैतन्य के शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से घातिकर्मों का क्षय होकर चैतन्यकली संपूर्ण विकसित होकर पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनंद प्रगट होता है और सादि-अनंतकाल तक स्थिर रहता है। यह आत्मा धन्य है कि जिसने ऐसे ज्ञान और आनंद को अपने में स्थिर कर रखा है। यह ज्ञान और आनंद आत्मा की ही उपादानशक्ति में से प्रगट हुए हैं, इसलिये स्वाधीन हैं, और उन्हें किसी अन्य वस्तु की अपेक्षा नहीं है, इसलिये निरपेक्ष हैं। जिसका उदय ज्ञानप्रकाश से परिपूर्ण और आनंददायक है—ऐसे चैतन्य भानु का सुप्रभातकाल में जो उदय हुआ, सो हुआ-वह अब कभी अस्त नहीं होगा।

प्रथम तो कुन्दकुन्दाचार्य की अद्‌भुत रचना और फिर उसके ऊपर अमृतचंद्राचार्य की टीका भरतक्षेत्र में अनूठी (अद्वितीय) है, पंचमकाल में अमृत बरसाया है। इस वर्ष श्री कुन्दकुन्द प्रभु की मूल गाथा सुप्रभात मांगलिकरूप में आई है, उसमें स्वचतुष्टयरूप महामंगल प्रभात का वर्णन है। आत्मा का स्वभाव ही ज्ञान और सुख है, इससे ज्ञान और सुखरूप आत्मा ही स्वयं परिणमित होता है। इन्द्रियों के बिना ही आत्मा को ज्ञान और सुख होता है, क्योंकि आत्मा का जो स्वभाव है वह पर की अपेक्षा से रहित है। जिसने ऐसे सुखस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान किया, वह आत्मा पर से और पर की ओर के भावों से उदासीन होकर अपने स्वरूप में परिणमित होने लगा।

अब ज्यों-ज्यों उसका काल जा रहा है, त्यों-त्यों उसका केवलज्ञान निकट आ रहा है, उसके आत्मा में जगमगाता हुआ चैतन्यसूर्य उदित होने की तैयारी हुई है। स्वभाव में ही उसका परिणमन होने से ज्यों-ज्यों अवस्था परिणमित होती जाती है, त्यों-त्यों केवलज्ञान निकट आता जाता है, एक समय में एक पर्याय परिणमित होती है और एक समय केवलज्ञान निकट आता है। ऐसी दशा आचार्यदेव को अपने में ही परिणमित हो रही है, अपने केवलज्ञान के कारणरूप शुद्धोपयोग वर्त रहा है। इससे कारणसहित कार्य का 'कलाप' (महिमा, शोभा) भी निकट ही होता है न!

[९] पद-पद पर पवित्रता

चैतन्यस्वरूप आत्मा को समस्त विभाव से भिन्न जानकर और अनुभव करके जिसने अपना उपयोग चैतन्यपरिणामस्वरूप किया है, ऐसे जीव को पद-पद पर-अर्थात् पर्याय-पर्याय में असाधारण विशुद्धता प्रगट होती जाती है। पहले अज्ञानदशा में अपने उपयोग को रागपरिणाम -स्वरूप करके परिणमन करता था, पश्चात् भेदज्ञान होने पर चैतन्यपरिणामस्वरूप परिणमन करने लगा। अब जैसे-जैसे पर्याय परिणमित होती है, वैसे ही वैसे उपयोग चैतन्य में एकाग्र होता जाता है। ऐसा आत्मा अनादि मोह का सर्वथा क्षय करके निर्विघ्न विकसित आत्मशक्तिवाला होता है। शुद्धोपयोग के प्रसाद से ही आत्मा, केवलज्ञान प्राप्त करता है—ऐसा पंद्रहवीं गाथा में कहा है।

[१०] जीव का ज्ञान इन्द्रियाधीन नहीं है

शुद्धोपयोग के प्रभाव से जो 'स्वयंभू' हुआ है—ऐसे आत्मा को इंद्रियों के बिना ही स्वयमेव ज्ञान और सुख होता है, यह बात आचार्यदेव सिद्ध करते हैं। पहले अपने आत्मस्वभाव को पहचान कर, शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से चार घातिकर्मों का नाश होने पर, जो स्वयं ही ज्ञान और आनंदरूप परिणमित हो गया है, ऐसे जीव को अपने ज्ञान और आनंद के लिये इन्द्रियों इत्यादि किसी भी पदार्थ की क्या आवश्यकता है? जो स्वतः ज्ञान और आनंदरूप अपने स्वभाव से ही होता है, उसे उसमें किसी अन्य पदार्थों की अपेक्षा नहीं है। जिसके इन्द्रिय और मन विद्यमान हैं, वह जीव भी, उनसे नहीं जानता किन्तु स्वयं ही ज्ञानरूप परिणमित होकर जानता है। कषाय को कम करके जो ज्ञान प्रगट हुआ है, उस ज्ञान के द्वारा ही जानता है। जिनके पाँच इन्द्रियाँ और मन हैं—ऐसे समस्त जीवों के एक-सा ज्ञान नहीं होता, किन्तु उनके ज्ञान में अंतर है, क्योंकि जीव को इन्द्रिय और मन से ज्ञान नहीं होता, किन्तु अपनी पर्याय में स्वतः ही जो ज्ञानरूप परिणमित होता है, उसका ही ज्ञान होता है, इसप्रकार जीव का ज्ञान पर से निरपेक्ष है।

[११] जीव का सुख इन्द्रियाधीन नहीं है

ज्ञान की भाँति सुख भी इन्द्रियों से नहीं होता। सिद्ध भगवान स्वयमेव इन्द्रियों के बिना ही सुखरूप परिणमन करते हैं। यदि इन्द्रियों से जीव को सुख होता हो तो जिनके पाँच इन्द्रियाँ हैं, उन समस्त जीवों को एक-सा सुख होना चाहिये। किन्तु ऐसा दिखाई नहीं देता। इन्द्रियाँ विद्यमान होते हुए भी अज्ञानी जीव आकुलता से दु:खी ही है। सुख का लक्षण तो अनाकुलता है। जितने अंश में आकुलता दूर करता है, उतने अंश में सुख होता है। सिद्ध भगवान अपने स्वभाव से ही संपूर्ण सुखरूप परिणमित हो रहे हैं। आत्मा का सुखस्वभाव इन्द्रियों के आधीन नहीं है।

[१२] आसन्न भव्य और अभव्य

ऐसे अतीन्द्रियज्ञान और सुखरूप आत्मा हो जाये, वही मंगलसुप्रभात है और ऐसे अतीन्द्रियज्ञान और सुखस्वभाव की यथार्थ पहिचान, वह भी मंगल है। बासठवीं गाथा में कहा है कि "केवली भगवान के ही पारमार्थिक (उत्कृष्ट) सुख होता है" ऐसा वचन सुनकर जो इसी समय उल्लास के साथ स्वीकार करते हैं, वे शिव श्री (मोक्षलक्ष्मी) के भाजन-आसन्नभव्य हैं और जो उसे सुनकर स्वीकार नहीं करते, वे मोक्ष सुखरूपी सुधापान से दूरवर्ती अभव्य हैं। जिसे इन्द्रिय-विषयों का ही सुख भासित होता है, और इन्द्रियरहित आत्मस्वभाव का सुख भासित ही नहीं होता, वह जीव आत्मा के सुखस्वभाव को ही नहीं मानता, और आत्मा के स्वभाव को नहीं मानने के कारण उसे कभी मुक्ति नहीं होती।

[१३] 'स्वयंभू' आत्मा की अतीन्द्रियता

स्वयंभू आत्मा के शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से घातिकर्म नाश को प्राप्त हुये हैं-यह पहला बोल यहाँ पूर्ण हुआ। 'स्वयंभू' आत्मा कैसा है ? इस सम्बन्ध का अब दूसरा बोल कहते हैं।

'क्षायोपशमिक ज्ञान-दर्शन के साथ असंपृक्त (सम्पर्करहित) होने जो अतीन्द्रिय हुआ है'—ऐसा 'स्वयंभू' आत्मा है। मति-श्रुत-अवधि और मन:पर्यय इन चार ज्ञानदशा को क्षायोपशमिक कहते हैं। वे चारों ज्ञान अपूर्ण हैं, और उसमें इन्द्रिय वा मन निमित्तरूप होते हैं। परन्तु वे क्षायोपशमिकज्ञान भी इन्द्रिय इत्यादि से जानने का काम नहीं करते, किन्तु ज्ञान की प्रगटता से जानने का काम करते हैं। उसीप्रकार सुख भी इन्द्रियों से नहीं होता। अज्ञानी जीव, इन्द्रियों के विषयों में सुख की कल्पना करते हैं, वह सुख की कल्पना भी इन्द्रियों से नहीं हुई किन्तु अज्ञानी जीव स्वत: उस कल्पनारूप परिणमित हुआ है; और ज्ञानी जीव अपने स्वभाव से ही सुखरूप

परिणमित होता है। क्षायोपशमिक ज्ञानवाले जीव को निमित्तरूप से इन्द्रिय-मन का अवलंबन है, ऐसी उसके ज्ञान की योग्यता है, किन्तु केवली भगवान को तो परिपूर्ण ज्ञानस्वभाव प्रगट हो जाने पर क्षायोपशमिक ज्ञानरूप परिणमन ही नहीं रहा, उनके अपूर्ण ज्ञान ही नहीं होने से इन्द्रिय-मन को अवलंबन निमित्तरूप से भी नहीं रहा। क्षायोपशमज्ञान के समय इन्द्रिय आदि को निमित्त कहा जाता था, किन्तु पूर्ण ज्ञान होने पर अब उन्हें निमित्त भी नहीं कहा जाता। शुद्धोपयोग के बल से आत्मा स्वतः पूर्ण ज्ञानरूप परिणमित हो गया, वहाँ अपूर्ण (क्षायोपशमिक) ज्ञान के साथ का सम्बन्ध टूट गया, और क्षायोपशमिक ज्ञान के समय इन्द्रियों-मन और कर्मों के साथ जो निमित्तपने का सम्बन्ध था, वह भी टूट गया। केवलज्ञान, वह स्वभावज्ञान है, उसमें कर्म अथवा इन्द्रियाँ-मन किसी का निमित्त नहीं है। आत्मा एक साथ दो अवस्थारूप परिणमित नहीं हो सकता, इससे जब क्षायोपशमिकज्ञानरूप परिणमित होता था, तब केवलज्ञान नहीं था और जब केवलज्ञान परिणमित हुआ, तब क्षायोपशमिकज्ञान के साथ सम्बन्ध नहीं रहा। अपूर्ण ज्ञान-दर्शन के समय इन्द्रिय इत्यादि निमित्त थे, किन्तु जब वह ज्ञान और दर्शनस्वभाव में ही संपूर्ण एकाग्र हो गये, तब अपूर्ण ज्ञान-दर्शन छूट गये और इन्द्रिय इत्यादि निमित्त की ओर का झुकाव भी सर्वथा छूट गया, इससे केवलज्ञान और केवलदर्शन अतीन्द्रिय हैं, उनका प्रकाश असाधारण है।

[१४] धर्म का आचरण

अहा! देखो यह स्वभाव के साथ सम्बन्ध जोड़ने और पर के साथ का सम्बन्ध तोड़ने की रीति, अर्थात् धर्म की रीति! जैसा अपना स्वभाव है, वैसा जानकर श्रद्धा-ज्ञान में स्वीकार करना ही दर्शन और ज्ञान का आचरण है; और पश्चात् उसी स्वभाव में उपयोग की एकाग्रता करना, वह चारित्र का आचरण है। इस आचरण से ही धर्म होता है; दूसरा कोई धर्म का आचरण नहीं है।

(अपूर्ण)

मुद्रक : चुनीलाल माणेकचंद रवाणी, शिष्ट साहित्य मुद्रणालय, दास कुंज, मोटा आंकडिया ता.११-०१-४९
प्रकाशक : जमनादास माणेकचंद रवाणी, आत्मधर्म कार्यालय, मोटा आंकडिया, काठियावाड